

वंशवाद का नमक अदा करती भारतीय राजनीति



हिंदी सिनेमा का यह लोकप्रिय संवाद तो आपने सुना ही होगा- " अब, तेरा क्या होगा रे कालिया !" उत्तर भी आप जानते ही हैं- "सरदार, मैंने आपका नमक खाया है !"

दरअसल भारतीय राजनीति भी प्रायः इसी लोकप्रिय संवाद और दृश्य का अनुसरण करती प्रतीत होती है। अधिकांश दलों के लोकप्रिय, अनुभवी एवं वरिष्ठ-से-वरिष्ठ नेता भी येन-केन-प्रकारेण किसी परिवार विशेष के 'शहजादे' या 'शहजादी' के समक्ष साष्टांग दंडवत की मुद्रा में या तो लोटते प्रतीत होते हैं या अंजुलि में गंगाजल अथवा मुख में दूब धारण कर वंश विशेष के प्रति समर्पण एवं निष्ठा की दुहाई देते दृष्टिगोचर होते हैं। चाहे वे युवा हों या बुजुर्ग, धुरंधर हों या नौसिखिए, ज्यादातर नेताओं की यही ख्वाहिश होती है कि जैसे भी हो वे किसी स्थापित राजनीतिक परिवार के कृपा-पात्र बन जाएँ और उनकी राजनीतिक वैतरणी पार लग जाए। यही कारण है कि इन राजनीतिक परिवारों-वंशों की शान में कसीदे पढ़ने का एक भी मौका वे अपने हाथ से नहीं जाने देते। और कहीं जो किसी ने थोड़ी-सी भी रीढ़ सीधी रखने की कोशिश की तो उसे दल से बाहर का रास्ता दिखाने में क्षण मात्र की देरी नहीं की जाती। क्या यही है- "जनता की, जनता के लिए तथा जनता द्वारा संचालित लोकतंत्र ?" क्या ऐसे ही लोकतंत्र का सपना सँजोया था हमारे महापुरुषों-मनीषियों ने ? यदि यही लोकतंत्र है तो फिर राजतंत्र में क्या बुराई थी ? बल्कि राजतंत्र में भी पात्रता और योग्यता की कसौटी पर कसकर ही कई बार 'युवराज' जैसे पद पर किसी को अभिसिक्त किया जाता था। क्या यह उचित है कि अनुभव, संघर्ष, शुचिता, योग्यता, नैतिकता, प्रतिबद्धता, कर्तव्यपरायणता जैसे मूल्यों को वनवास देकर अयोग्यता, अनैतिकता, चाटूकारिता, अवसरवादिता को प्रश्रय एवं प्रोत्साहन दिया जाय ?

एक ओर वंशवाद की विष-बेल को सींचने और परिपुष्ट करने के लिए नवोदित राजनीतिक प्रतिभाओं की भ्रूण-हत्या अनुचित है तो दूसरी ओर सत्ता के लिए वैचारिक प्रतिबद्धता को खूँटी पर टाँगने को भी न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता। समर्पित-संघर्षशील-प्रतिबद्ध-परिपक्व कार्यकर्त्ताओं के अरमानों का गला घोटकर चाँदी का चम्मच मुँह में लेकर पैदा होने वाले 'युवराजों' या 'आयातितों' को थाली में परोसकर सत्ता सौंप देना नितांत अलोकतांत्रिक चलन है। ज़रा कल्पना कीजिए, कल्पना कीजिए कि कोई वर्षानुवर्ष जी-तोड़ परिश्रम करे, निजी सुख-सुविधाओं एवं ऐशो-आराम को तिलांजलि देकर निर्दिष्ट-निर्धारित कर्त्तव्यों के निर्वहन को ही जीवन का एकमात्र ध्येय माने और मलाई कोई और चट कर जाय, क्या यह स्थिति किसी को स्वीकार्य होगी ? सच तो यह है कि जिस प्रकार आग में तपकर ही सोना कुंदन बनता है, शिल्पकार के छेनी और हथौड़े की चोट सहकर ही अनगढ़ पत्थर सजीव और मूर्तिमान हो उठता है, उसी प्रकार संघर्षों की रपटीली राहों पर चलकर ही कोई नेतृत्व सर्वमान्य और महान बनता

है। चाटूकारों और अवसरवादियों की भीड़ और उनकी विरुदावलियाँ किसी नेतृत्व को सार्वकालिक और महान नहीं बनातीं।

सभी राजनीतिक दलों को वैचारिक निष्ठा एवं प्रतिभा को प्रोत्साहन देना चाहिए और वंशवाद व दल-बदल जैसी प्रवृत्तियों को हतोत्साहित करना चाहिए। बीते कुछ वर्षों में यह वंशवाद दल-बदल का भी प्रमुख कारण बनता रहा है। सच तो यह है कि वंशवाद अधिनायकवादी, तानाशाही, प्रतिगामी एवं यथास्थितिवादी विचारों एवं वृत्तियों का पोषक है, वह परिवर्तन एवं सुधारों का अवरोधक है। वह अधिकारों, अवसरों एवं सत्ता-संसाधनों को वंश विशेष तक सीमित रखने के कुचक्र रचता रहता है। उसका विश्वास सामूहिकता में संभव ही नहीं है। असहमति और विरोध के हर सही स्वर को कुचल डालना वह अपना एकमेव नैतिक उत्तरदायित्व समझता है। वंशवाद की खुराक पाकर पले-बढ़े नेता किसानों और ग़रीबों के हितों की बातें तो खूब करते हैं, पर उनका ज़मीनी ज्ञान प्रायः शून्य होता है। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में आश्चर्यजनक रूप से कई बार तो उन्हें 'गेहूँ' और 'जौ' तक का अंतर नहीं पता होता, उन्हें नहीं पता होता कि 'लाल मिर्च' उगाई जाती है कि तैयार की जाती है। मुँह का ज़ायका बदलने और लोकप्रियता बटोरने के लिए वे किसी 'कलावती' के घर का भोजन तो बड़े चाव से करते हैं, पर ग़रीबी उनके लिए केवल एक मानसिक स्थिति है और इसका भौतिक चीज़ों से कोई वास्ता नहीं होता।

यदि गंभीरता और गहनता से विचार करें तो यह वंशवाद भारतीय राजनीति में व्याप्त अनेक बुराइयों की जननी है। और दुर्भाग्य से अधिकांश दल इसकी चपेट में आते जा रहे हैं। लोकतांत्रिक एवं युवा भारत की प्रगति एवं समृद्धि के लिए यह आवश्यक है कि इसे अब जड़-मूल समेत उखाड़ फेंकना चाहिए।

प्रणय कुमार

गोटन, राजस्थान

9588225950